शहर कोतवाल की कविता

देवेंद्र

शहर कोतवाल की कविता

बात **1974** की है। रोज-रोज हड़ताल होती थी, आफिसों का घेराव होता था। शहर की हालत यह हो गई कि जुलूस और प्रदर्शन से अलग उसके बारे में कोई बात ही नहीं की जा सकती थी। उन्हीं दिनों किसी पहाड़ी इलाके से ट्रांसफर होकर एक कोतवाल शहर में आया। मैं यह तो नहीं कह सकता कि वहाँ किन परिस्थितियों में वह कैसे रहता था,

लेकिन शहर में आने के करीबन महीने भर बाद ही चाय और पान की दुकानों पर बैठे लोग किसी-न-किसी बात को लेकर अक्सर उसकी चर्चा करने लगते। उसके बारे में लोगों की धारणा किसी अच्छे आदमी के रूप में कभी नहीं थी।

एक दिन दोपहर के समय जब सड़क रोज की ही तरह साइकिलों, रिक्शों और सिटी बस के बीच बिल्कुल दब-सी गई थी, कहीं से घूमता हुआ शहर कोतवाल आया। उसके साथ दो-चार कांस्टेबुल थे। कोई जानता भी नहीं था कि क्या होने वाला है। शहर के लिए इस तरह रोज घंटों ट्रैफिक का जाम होना आम बात थी। रिक्शेवाले सवारियों को बैठाए बीच सड़क पर मजे से पसीना पोंछ रहे थे। तभी अचानक एक कोने से जोर की भगदड़ मची। कुछ चीख पुकार सुनाई पड़ी। भागने की जगह थी भी कहाँ? लोग एक-दूसरे के ऊपर गिर रहे थे। शहर कोतवाल का मोटा डंडा बेरहमी से रिक्शा वालों की नंगी पीठ पर बरस रहा था। अभी थोड़ी देर पहले तक जो स्कूली छोकरे सायकिलों पर इत्मीनान से पैर टिकाए बगल में रिक्शे पर बैठी किसी लड़की को ताकते हुए रूमाल से हवा कर रहे थे-वे भी डंडे की मार से नहीं बचे। ज्यादा समय नहीं लगा होगा, सड़क एकदम वीरान हो गई। कुछेक भद्र पुरुष और रिक्शे वाले खून से लथपथ बेहोश थे। कुछेक रिक्शों पर किसी तरह सही-सलामत बच गए। बच्चे दूर-दूर तक भी अपने माँ-बाप को न पाकर चिल्ल-पों कर रहे थे। पूरी सड़क, उलटे-पुलटे रिक्शों और साइकिलों से पटी पड़ी थी। अगल-बगल की दुकान वाले कुछ समझने से पहले शटर गिराकर गायब हो चुके थे। उस दिन पहली बार लगा दिन को भी रात बनाया जा सकता है। शहर कोतवाल अभी तक जोर-जोर से गालियाँ देता हुआ खुली सड़क पर हाँफ रहा था। कुछ लोग जो किसी तरह कोने में दुबके हुए बच गए थे, बता रहे थे कि कांस्टेबुलों तक के चेहरे पर हवाई उड़ रही थी।

यह पहला दिन था जब कोतवाल अपनी कोतवाली से बाहर खुली सड़क पर आ गया। शाम के समय चौराहों, नुक्कड़ों और चाय की दुकानों पर सायंकालीन अखबारों में छपे सड़क के मातमी दृश्य और कोतवाल की फोटो को देखते हुए लोग इस बात को बहस का विषय बनाए हुए थे। सबको पक्का यकीन था कि इतने हो-हल्ले के बाद तो सरकार किसी भी तरह इस कोतवाल को बर्दाश्त नहीं करेगी। मुअत्तल न भी करे तो भी कुछ-न-कुछ जरूर करेगी, लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ।

वह रोज शाम को सड़क पर निकलता और भीड़ छँट जाती। जिसकी ओर देखकर मुस्कराता उसका दिल दहल जाता। वर्दी में मुस्तैद, मूँछों को ऐंठता, मोटा डंडा लिए हुए वह अक्सर अपने हेड कांस्टेबुल के साथ ही निकलता। सड़क पर आते ही दोनों एक दूसरे की आँखों में आँखें डालते, मूँछे ऐंठते, मुस्कराते फिर जोर से ठठाकर हँसते और

शिकार की तलाश में निकल पड़ते साल के भीतर उन्होंने एक पर एक कई हमले किए। इस बीच कितनी औरतें बेवा हुईं, कितनी कालेज से लौटती लड़कियाँ रात-रात भर गायब रहने के बाद गंगा में उतराती मिलीं, कितनी बार जुलूस निकले, अखबार चिल्लाए लेकिन दोनों के व्याकरण में कोई तब्दीली नहीं आई। रात के समय शरीफ हों या उचक्के दोनों ने घूमना बंद कर दिया था। क्या पता किधर हो कोतवाल और किसका मुकाबला हो जाए उसके साथ।

एक दिन रात के दस बज रहे थे। वह घूमता हुआ चौराहे की ओर आया। इधर उसका आना कम ही होता था। उस दिन वह पप्पू की चाय की दुकान के सामने से गुजरा। रोज की ही तरह वहाँ भीतर से जोर-जोर की आवाज आ रही थी। कोतवाल रुक गया। कुछ जाँचने की मुद्रा में उसने कांस्टेबुल की आँखों में देखा, कांस्टेबुल बोला - 'साहब, शहर के छँटे हुए लफंगे, रोज रात तक यहाँ अड्डा मारते हैं।'

कोतवाल मुस्कराया, उसने और जानकारी बढ़ाई - 'इनमें कोई पत्रकार है, कोई साहित्यकार और कोई उभरता हुआ नेता। सबके सब मेहतरों की बस्ती की तरह हाँव-हाँव, किच-किच करते हैं। न कोई काम, न धंधा, बस देश की चिंता। इसके मारे तो जी-आजिज आ गया है। क्या आपको इनकी बाबत कुछ भी पता नहीं था।'

कोतवाल उदास हो गया, बोला - 'सुनो दीनानाथ, मैं अगर सरकार होता तो देश भर में चाय और पान की दुकानें बंद करा देता। वह ऐसा रथ है जिस पर बैठकर निकम्मी राजनीति चारों ओर घूमती है।'

कांस्टेबुल भी उदास हो गया। आधे मिनट तक चुप-चुप दोनों एक-दूसरे की आँखों में आँखें डालकर देखते रहे। हल्के से मुस्कराए फिर जोर से ठठाकर हँसे। उनका हँसना इतना भयावह था कि चाय बनाता पप्पू गिरते-गिरते बचा। दोनों तेजी से भीतर घुसे। एक आदमी जो अभी-अभी उठकर बाहर जा रहा था, उसके पेट में कोतवाल ने मोटा डंडा घुसेड़ दिया। वह तिलमिलाकर लचक गया। कांस्टेबुल के डंडे उसके ऊपर बेरहमी से बरसने लगे। एक-दूसरे आदमी ने दौड़ कर पकड़ना चाहा लेकिन वे दोनों अबकी उस पर ही पिल पड़े। अक्सर वहाँ बैठने वाले कायर और डरपोक ही थे, सबके सब दुम दबा कर भाग गए। आस-पास की दुकानें पहले ही बंद हो चुकी थीं। जो बाकी रह गई थीं उन्हें बंद होने में थोड़ी भी देर नहीं लगी। चारों ओर सन्नाटा था, दूर गलियों में कुछ कुत्ते भूँक रहे थे। कोतवाल और कांस्टेबुल उन दोनों को घसीट ले गए।

दूसरे दिन जैसे अखबार वालों का अब यह आखिरी और सामूहिक प्रयास था। जितना हो सकता था, उन्होंने हो-हल्ला मचाया। एक ही दिन नहीं, लगातार किश्तों में लिखते

रहे, सबको बहुत उम्मीद थी कि आखिर इस अन्याय और जुल्म को कहीं-न-कहीं तो रुकना चाहिए लेकिन ऐसा कुछ भी मुमकिन नहीं हुआ। शहर में एस.पी. हों या कलेक्टर सब इस कोतवाल का मतलब जानते थे। उन्हें पूरा यकीन था कि दंगे हों या फसाद, जुलूस हो या हड़ताल, ट्रक भर पी.ए.सी. से ज्यादा कारगर होता है यह कोतवाल। इस कोतवाल के पास सिर्फ तीन चीजें थीं, ऐंठी-तनी मूँछ, डंडा और यह हेड कांस्टेबुल दीनानाथ। पिछले तीन सालों से दोनों साथ-साथ थे। दोपहर या शाम को साथ ही निकलते थे और भीड़ भरी सड़कों पर कर्फ्यू की-सी दहशत छा जाती। वे जिसकी बगल से गुजरते उसके शरीर में सरसराहट होने लगती। इस बीच खटकिनों ने खोंमचे लगाना बंद कर दिए और लड़कियों ने घूमना। पार्कों में खेलते हुए बच्चे अँधेरा होने से पहले घर चले जाते। समूचा शहर जानता था कि कोतवाल और कांस्टेबुल की दोस्ती अपना मिसाल नहीं रखती।

कोतवाल के तीन सालों की दिनचर्या के विषय में यही कहा जा सकता है कि वह रोज सुबह नहा-धोकर वर्दी पहनता, दिन भर शहर में या साहब लोगों के दफ्तर में घूमता था, दौड़ता था। रात के समय तक जब बुरी तरह थक जाता तो सोने के लिए अपने दड़बे की ओर चल देता। इस समय वह नशे में बुरी तरह हिलता। सारे अफसरों को यह बात मालूम थी कि पीने के बाद खुली सड़क वह उन्हें गाली देता है, अपने कांस्टेबुल को भी गाली देता है। बावजूद इसके उन्हें इस विषय में सोचने की फुर्सत नहीं थी। वे जानते थे कि चाहे वह कितना भी क्यों न पिए हो सामने पड़ने पर उसे हर्गिज नशा नहीं होता।

एक दिन जब क्वार के महीने में आसमान एकदम साफ था, शाम के समय वह अकेले ही घूमते-घूमते शहर के पिछवाड़े जा पहुँचा जहाँ से गाँवों का सिलसिला शुरू होता था। डूबते हुए सूरज को देखकर उसे लगा कि बहुत दिन हो गए लेकिन उसने इतनी सुंदर शाम कभी देखी ही नहीं। कल्पना में घूमता-घूमता उसका मन अपने गाँव जा पहुँचा, जहाँ बँसवारों के पीछे सूरज डूब रहा है। थके हुए पक्षियों की तरह सिवान से लौटते हुए लोग एक ऐसे सहज प्रेम से भरे हुए हैं जो अब उसके लिए बिल्कुल अपरिचित हो गया है। खपरैलों पर धुएँ के टुकड़े रेंग रहे हैं। सारा गाँव खेलते-दौड़ते बच्चों के शोरगुल में समा गया है। उसने देखा कि इन सबके बीच चुहानी में धुएँ से लिपटी एक औरत भी है जो उसकी पत्नी है। उसे लगा, पिछले पाँच सालों में एक इंतजार खूबसूरत फूल की तरह उसकी आँखों में मुरझा गया है। उस दिन कोतवाल का मन कहीं भी नहीं लगा। वह पूरी रात अकेले उदास पड़ा रहा।

दूसरे ही दिन कोतवाल ने छुट्टी की अर्जी दी और गाँव के लिए चल पड़ा। दिन भर बेहद ऊब और थकावट पैदा करने वाली यात्रा के बाद उसने वह आखिरी बस पकड़ी जो उसके गाँव के पास वाले कस्बे तक जाती थी। प्राइवेट बस थी। कंडक्टर ने इतनी ज्यादा सवारियाँ ठूँस ली थीं कि तिल रखने की भी जगह शेष नहीं थी। लोग एक-दूसरे के ऊपर झुके हुए से खड़े थे। साँस लेने तक में दिक्कत महसूस हो रही थी। कुछ औरतें जो किसी तरह सीट पर बैठ चुकीं थीं, घबड़ा-घबड़ा कर बेना डोलातीं और गोद में अकुलाते बच्चों को दूध पिलाने की कोशिश करतीं लेकिन वे जोर-जोर से चिल्ला रहे थे। बस में बैठे हुए सारे शिष्ट और अशिष्ट लोग अपनी-अपनी भाषा में कंडक्टर को गाली दे रहे थे। और ड्राइवर को इस बात के लिए कोस रहे थे कि वह क्यों नहीं बस को जल्दी स्टार्ट कर अत्यंत धैर्य-पूर्वक टिकट बनाने में मशगूल था। सामने कोतवाल को पुलिस वर्दी में देखकर बुरा-सा-मुँह बनाया और अगले आदमी से टिकट का पैसा माँगने लगा। एक अधेड़ आदमी जो संभवतः गाँव का ही होगा, इस धक्कम-धुक्की में कोतवाल से दो-तीन बार डाँट खा चुका था, अब उसे लगा कि मुफ्त में चलने वाला यह पुलिस का आदमी उस पर अपनी वर्दी झाड़ रहा है। कोतवाल की ओर देखते हुए उसने आसपास के लोगों को सुनाया - कंडक्टर साहब, अब हम भी होमगार्ड की वर्दी सिलवा लेंगे, पैसे मत माँगना।

उसकी बात को सुनकर लोग अचानक हँस पड़े। कोतवाल के लिए यह एकदम नई बात थी। उसका रोवाँ-रोवाँ जल उठा, लेकिन क्या करता, वर्दी इलाके के बाहर थी। मन ही मन कहा बच्चू, एक बार किसी तरह शहर में पहुँच जाते तो जन्म भर वर्दी को नहीं भूलते और उसने जोर से कंडक्टर को डपटते हुए अपना टिकट माँग कर पैसा थमाया। साथ ही यह बताना नहीं भूला कि हम वैसे पुलिस वाले नहीं हैं।

वह कस्बे से पैदल ही गाँव की ओर चला। एक हाथ में झोला था और दूसरे में मिठाई का पैकेट। रास्ते में ही गाँव-जवार के परिचित लोग मिलने लगे। सबसे हाल-चाल पूछता-बताता जब घर पहुँचा तो उसे लग रहा था, गाँव काफी बदल गया है और नई चीजें उसे तरजीह नहीं दे रही हैं। डूबती हुई साँझ की तरह उसका मन पत्नी से मिलने के बाद भी अकेला पड़ा रहा। गाँव-सिवान में लोगों से मिलते-बतियाते उसे बार-बार लग रहा था कि कहीं कोई चीज उसके भीतर से खो गई है जिससे सब कुछ असहज लग रहा है। चलते हुए अचानक वह एक जगह रुक गया, यहीं कभी बड़ा-बूढ़ा बरगद का पंचायती पेड़ था। अब उसका नामोनिशान भी नहीं है। वहाँ एक बिजली का खंभा गड़ा है जिसके सभी तार एक-दूसरे से उलझे पड़े हैं। स्मृतियों में खोया हुआ वह गाँव की सरहद की ओर देखने लगा जहाँ अब नागफनी का बड़ा टीला ही शेष रह गया था।

उसे इस तरह सड़क पर अकेले खड़ा देखकर एक लड़का सायकिल से आ रहा था, उतर गया और सलाम किया। कोतवाल उसे पहचान नहीं रहा था, लड़के ने बताया कि वह बगल के गाँव का रहने वाला है। पास के दो-तीन गाँवों में उसकी छोटी-मोटी डॉक्टरी है। शाम के समय वह इस गाँव के मरीजों को देखता है। दिन भर में तीस रुपए मिल जाते हैं और यह कि उसने उसके विषय में बहुत दिन से सुन रखा था।

दोनों बातें करते हुए गाँव की ओर चले। कोतवाल ने पूछा - 'इस बीच गाँव कितना बदल गया है? लोग अपने में ही सिमटे-सिमटे क्यों लग रहे हैं?'

लड़का हँसते हुए सकुचा रहा था, बोला - 'नहीं, ऐसी बात तो नहीं है। खर्चे बढ़ गए हैं लेकिन लोग पहले से ठीक हैं।'

घर आने तक कोतवाल को लगने लगा कि उसका मन बहुत बेचैन हो रहा है। काफी ऊब जाने के बाद जब वह रात को सोने के लिए गया तो उसे नींद नहीं आ रही थी। पत्नी बर्तन माँजने में लगी हुई थी। लेकिन उसे लगा कि वह जान-बूझकर देर कर रही है। वह बार-बार करवट बदलता, चिढ़ कर बैठ जाता फिर सोने की कोशिश करता लेकिन परेशानी बढ़ती ही जाती। काफी रात बीत जाने के बाद पत्नी सोने के लिए आई। कोतवाल सोच रहा था कि पत्नी भरसक कट रही है। बगल में सोने के बावजूद वह बार-बार उसके चेहरे को अपने हाथों में लेकर आँखों में कुछ जाँचता, फिर पूछता - 'बताओ, तुम ऐसी क्यों हो गई हो, आखिर क्या सोच रही हो और क्यों जान-बूझकर देर कर रही थीं?'

पत्नी को बड़ा अजीब सा लग रहा था, बोली - 'नहीं, मैं तो एकदम ठीक हूँ, आखिर काम करने में देर तो हो ही जाती है।'

कोतवाल सोचने लगा - यह तो बात का कोई जवाब नहीं है और यह जान-बूझ कर ही सवाल को काट रही है।

थोड़ी देर बाद ही पत्नी को नींद आने लगी। उसने करवट बदली और दूसरी ओर मुँह फेरकर सो गई। कोतवाल वैसा ही अकेला पड़ा रहा। उसे लगने लगा-रात काले भयावह पहाड़ की तरह उसके ऊपर पसर गई है। आसपास एक पीड़ा फैल रही है। जिसमें शरीर अवश होकर डूब रहा है। भयाक्रांत आदमी की तरह उबरने की पुरजोर कोशिश करते हुए लगभग चीखने की मुद्रा में उसने पत्नी को जगाया। जगाने का यह ढंग पत्नी को अजीब सा लगा, बोली - 'तुम्हें कुछ हुआ है क्या? तबीयत तो ठीक है न?' और उसने हल्के हाथ से उसके माथे को छुआ।

कोतवाल ने कहा - 'हाँ, मैं एकदम ठीक हूँ। तुम जरा पानी लाओ, प्यास लगी है।'

पानी देकर थोड़ी देर बाद ही पत्नी फिर गहरी नींद में सो गई लेकिन वह बिस्तर पर पड़ा-पड़ा कोशिश करता रहा। नींद कोसों दूर थी। बेचैनी जब फिर बढ़ने लगी तो वह उठा और बाहर बरामदे में चला गया।

सबेरा होते-होते कोतवाल को हल्का सा बुखार हो गया। पत्नी ने अंदाज लगाया कि संभवतः इसी कारण उसे रात को अच्छी नींद नहीं आई लेकिन खास चिंता की बात नहीं थी, वह अपने रोज के काम में लग गई। कोतवाल को कुछ अजीब सा लग रहा था, पत्नी से बातचीत करने के लिए भीतर गया, पूछा - 'तुम्हें यहाँ कोई तकलीफ तो नहीं है, अगर कोई दिक्कत हो तो शहर चली चलो, कुछ दिन रहकर चली आना।'

यह कहते हुए उसे लग रहा था कि मन की गहराई में कोई चीज बहुत धीरे-धीरे हिल रही है। पत्नी चाय छान रही थी, बोली - 'नहीं, शहर चले जाने पर यहाँ का काम कौन सँभालेगा? हाँ, अगर पैसा हो तो पाँच सौ रुपया दे देना, एक आदमी से कर्ज लिया था।'

कोतवाल का मन अचानक बुझ गया, सोचने लगा-पत्नी अपनी सीमित दुनिया में कितनी छोटी हो गई है। उसे बहुत तरस आया। कोशिश कर रहा था कि बातचीत आगे बढ़े लेकिन शब्द नहीं मिल रहे थे। उसे लग रहा था कि कुछ ऐसी बात है जिसे वह कहना चाहता है लेकिन बोल नहीं पा रहा है। पत्नी चूल्हे पर चावल के लिए पानी चढ़ा रही थी। कोतवाल ने पूछा - तुम्हें गाँव के लोग गाली तो नहीं देते हैं?

वह काम में लगी हुई थी, अचानक रुक गई - 'क्यों, लोग गाली क्यों देंगे? मैंने किसी का क्या बिगाड़ा है?'

कोतवाल को अपने सवाल के बेतुकेपन पर झेंप आ गई। उसने सँभालने की कोशिश की, 'नहीं, लोग आजकल अनायास ही पीठ पीछे गाली देते हैं।' और चाय लेकर बाहर चला आया। अपनी बात को न कह पाने के कारण उसका मन भारी बना रहा। दरवाजे पर नीम की छाया में बैठा हुआ वह सिवान की ओर वैसे ही ताक रखा था। पास ही पड़ोस की दो लड़कियाँ गुड्डे-गुड़िया का खेल खेल रही थीं। नीम की पत्तियाँ हिल रही थीं और उसका मन उदासी से डूबता चला जा रहा था।

दोपहर को खाने के बाद उसने पत्नी को बताया कि वह शहर जाएगा तो चौंक गई, बोली - 'तुम तो कह रहे थे कि पंद्रह दिन की छुट्टी है। इतने दिन पर आए हो, जल्दी क्या है? फिर तुम्हारी तबीयत भी तो भारी है।' लेकिन उसने कुछ जवाब नहीं दिया।

शहर आने के बाद दो दिन बीत गए। कोतवाल अपने महकमे के किसी आदमी से नहीं मिला? सड़क पर निकलने की बात तो दूर थी। पता लगने पर जब उसका कांस्टेबुल आया तो उसने बहुत रूखेपन के साथ उससे न मिलने की इच्छा जाहिर कर दी।

अगले दिन सबेरे, जब लोग पूरी तरह घरों के बाहर निकले भी नहीं थे कि बगैर अखबारों के ही सारे शहर में कानों-कान खबर फैल गई कि कोतवाल ने आत्महत्या कर ली है। लोग मुँह खोले अचरज में इसे सुनते और फिर दूसरे को यकीन दिलाते कि एकदम सच बात है। उसने अपनी रिवाल्वर से गोली चलाई है और उसकी लाश कोतवाली में रखी हुई है।

कोतवाली के अहाते में एक ओर लाश को सफेद चादर में ढँक कर रख दिया गया था। दूर सड़क से आते-जाते लोग उझक-उझककर देख रहे थे। शहर के सारे अफसर वहीं थे। उनके चेहरों पर मुर्दनी छाई हुई थी। सबके सब एक-दूसरे के प्रति सशंकित कुछ कहना चाहते थे लेकिन भीतर-ही-भीतर किसी अदृश्य से डर रहे थे। बरामदे की जमीन पर बैठा हुआ कांस्टेबुल दीनानाथ न सिर्फ कोतवाल की मौत से बेचैन था बल्कि उसे लग रहा था कि यह एक ऐसा सिलसिला है जहाँ फरक कर पाना मुश्किल है कि मामला हत्या का है या आत्महत्या का।

धीरे-धीरे दोपहर हुई और फिर शाम। लोग इस खबर के प्रति अभ्यस्त हो गए। हर बड़ी-से-बड़ी घटना को भूल जाने की अपनी आदत के मुताबिक शहर फिर अपनी पुरानी दिनचर्या में लौट गया। लेकिन पूरे प्रशासन के चेहरे पर जो पीलापन छा गया था उसके कारण उनकी रात और भी ज्यादा काली तथा भयावह हो गई, दिन और भी सूखा तथा उदास। कांस्टेबुल दीनानाथ तो सैनिटोरियम के मरीजों जैसा लगता। दिन भर अपने दड़बे में पड़ा रहता और रात को जब कभी किसी तरह भूले-भटके उसे नींद लग जाती तो डरावने सपने दिखाई देते। मेले में खोए बच्चे की तरह हरदम रोता रहता। आँखें सूजकर लाल हो गई थीं। दरवाजे के आसपास जब कभी पैरों की आहट होती तो वह जोर से चिल्ला-चिल्लाकर पूछने लगता - कौन है! कौन है! इतने दिनों में मुश्किल से दो-तीन बार ही बाहर निकला और सीधे साहब के पास गया, रोया, गिड़गिड़ाया - 'साहब, इस शहर से मेरी बदली कर दीजिए।'

साहब बहुत कातर आँखों से उसे देखता जिसमें उसके लिए रहम और अपनी मजबूरी का भाव उभरता था। एक दिन उन्होंने बताया - 'देखो, तुम्हारी बदली अब हमारी मर्जी के बाहर है। शायद तुम्हें अंदाजा होगा कि कोतवाल की बात इतनी मामूली नहीं है। हमारे चाहने से भी सरकार उसे ऐसे नहीं छोड़ेगी। ऊपर वालों तक को कोतवाल पर

नाज था। कोई सोच भी नहीं सकता था कि इसके भीतर इतना बड़ा झूठ है और इसकी इतनी आसान मौत होगी। सरकार मामले की तह में जाना जरूरी समझती है। जल्दी ही एक बड़ा जाँच कमीशन आने वाला है। ऊपर से यह आदेश है कि इसके लिए तुम्हारा रहना जरूरी है।'

ये बातें सुनकर कांस्टेबुल को लगा कि सारा शरीर सुन्न होता जा रहा है और आँखों के आगे केवल अँधेरा-ही-अँधेरा है। लौटते हुए उसके पैर इतने बोझिल थे कि सड़क पर चल पाना असंभव लग रहा था।

आमतौर पर ऐसा कम ही होता कि कोई सरकारी काम इतनी जल्दी शुरू हो जाय लेकिन इस बार ऐसा ही हुआ। मामले की जाँच करने के लिए दिल्ली से सी.बी.आई. के पाँच बड़े अधिकारी शहर में आए और शहर के सारे अधिकारी चौकस हो गए। आने के बाद उन लोगों ने क्या किया, किससे मिले, इन बातों की जानकारी किसी को नहीं मिल पाई। एक दिन रात के ग्यारह बजे पुलिस की एक जीप कांस्टेबुल के क्वार्टर के सामने रुकी। पुलिस का एक अफसर उसमें से उतरा और उसने बताया कि कोतवाल वाले मामले में अभी तुरंत उसकी हाजिरी जरूरी है। वे लोग उससे कुछ बयान लेना चाहते हैं।

कांस्टेबुल जब जीप में बैठा तो उसे लग रहा था जैसे उसे फाँसी चढ़ाने के लिए ले जाया जा रहा हो। एक बड़े-से हाल के भीतर घुसते हुए उसके पैर बुरी तरह काँप रहे थे। जीप पर ले आने वाला अफसर उसे छोड़कर वापस लौट गया। सामने एक बड़ी-सी गोल मेज के इर्द-गिर्द पाँच आदमी बैठे थे। कांस्टेबुल बगैर बताए इस बात को जान गया कि उसे इन्हीं लोगों के सामने बयान देना है। डरते-डरते उसने सबको सलाम किया लेकिन किसी ने सिर तक नहीं हिलाया। उनमें से एक आदमी झुककर फाइल पलट रहा था और दूसरा कुर्सी पर पीछे की ओर उठंगा हुआ सिगरेट के धुएँ को गोल-गोल बनाकर ऊपर की ओर छोड़ रहा था। शेष तीन मूर्तिवत बैठे उसे एकटक घूर रहे थे। चारों ओर घुटी हुई सी खामोशी थी। कांस्टेबुल को चुपचाप खड़ा देखकर सिगरेट पी रहे आदमी ने सामने खाली पड़ी कुर्सी पर उसे बैठने का इशारा किया। तीनों पहले की ही तरह अब भी उसे घूर रहे थे। कांस्टेबुल के भीतर धकधक की आवाज हो रही थी। बावजूद इसके कि बाहर हल्की-हल्की ठंड पड़नी शुरू हो गई थी, उसे बहुत जोर की प्यास लगी, लेकिन वह पानी माँगने की बात सोच भी नहीं सकता था।

कुर्सी पर बैठने के तकरीबन पंद्रह मिनट बाद तक वे वैसे ही चुप पड़े रहे। इसके बाद वह आदमी जो काफी देर से फाइल में उलझा हुआ था, उसे बंद करता हुआ बोला -

'तुम कांस्टेबुल दीनानाथ हो?'

'जी साहब!'

इसके बाद दो मिनट तक चुप्पी रही। फिर सिगरेट पी रहे व्यक्ति ने सामने ऐश ट्रे में राख झाड़ते हुए बड़े इत्मीनान के साथ धीरे-धीरे बोलना शुरू किया - 'हमें तुमसे कोतवाल के बारे में कुछ पूछताछ करना है। पूरे महकमे में तुम उसके सबसे करीबी रहे हो। तुम्हें पता है कि वह कविताएँ लिखता था?'

'नहीं साहब, इसके बारे में मुझे कुछ भी मालूम नहीं है।'

'तो सुनो, उसने अपनी डायरी में एक कविता लिखी है। कुल नौ लाइनें हैं। हमें उसी के बारे में तुमसे जानना है।'

कांस्टेबुल को लग रहा था कि शेष चारों की आँखें उसके दिल के भीतर बहुत बेरहमी से कुछ उलट-पुलट कर रही हैं। इस पूरी प्रक्रिया से वह इतना बेचैन हो गया है कि उसके आस-पास सिवा भय के कुछ रह ही नहीं गया। सामने वाले आदमी ने कुछ देर रुककर फिर बोलना शुरू किया - 'वैसे तो हम लोग सरकारी महकमे के आदमी हैं, भरसक कविता-वविता से दूर ही रहना चाहिए लेकिन अगर कोई लिखने ही लगे तो सबसे पहले उसे वह तमीज आनी चाहिए जो कविता के लिए जरूरी है। यह भी कोई तुक है कि घर की बात बाहर रोएँ। बहरहाल, तुम इन बातों को छोड़ो। उसने लिखा है - इस शहर में रोज रात जितनी हत्याएँ होती हैं और जितने बलात्कार होते हैं उनके आधे से ज्यादा में हम सशरीर शामिल रहते हैं। बाकी में हमारी आदतें - तुम इस बारे में कुछ बताओगे?'

कांस्टेबुल का चेहरा एकदम पीला पड़ गया, कई बार थूक गटकने की कोशिश की लेकिन जुबान खुल ही नहीं रही थी। बगल में बैठा हुआ एक दूसरा आदमी, जिसके होंठ भद्दे ढंग से लटके हुए थे, और जो चश्मे के ऊपर से लगातार घूर रहा था, उसने बोलना शुरू किया - 'वैसे तो हम इस बात को न ही गलत मानते हैं न सही, हमारे लिए इसका कुछ मतलब ही नहीं बनता लेकिन तुम बताओ, कुछ कहना चाहते हो?'

कांस्टेबुल ने डरते हुए दो-तीन बार खँखारा और बोलने की कोशिश की - 'साहब के साथ रहते हुए मुझे बहुत डर लगता था। मैं कुछ बोल नहीं पाता था। जब भी ऐसा करते, बिलकुल बदहवास हो जाते। पता नहीं किसे जोर-जोर से गाली देते थे। तब मुझे वही करना पड़ता था जो वे कहते।'

तीसरा आदमी बोला - 'लेकिन उसने लिखा है - यह शहर जहाँ मुझे देखकर उड़ती हुई चिड़िया भी रास्ता बदल लेती है, मेरे लिए भयावह पिरामिड की तरह है। यहाँ एक-एक आदमी मेरी हत्या के लिए घात लगाए बैठा है। मैं इसमें से निकलना चाहता हूँ लेकिन मेरा बड़ा अफसर और कांस्टेबुल दीनानाथ ऐसा नहीं चाहते। दीनानाथ मेरे अदृश्य हत्यारों के गिरोह का सबसे बड़ा खतरनाक खुफिया है।'

यह सुनकर कांस्टेबुल डर के मारे रुआँसा हो गया, बोला - 'साहब, मैं तो सोच भी नहीं सकता कि वे ऐसा कैसे सोचते थे? हाँ, रात के अकेले में साहब के साथ रहते हुए मुझे बहुत डर लगता था - अपनी जान का भी।'

अबकी चौथा बोला - 'उसने लिखा है - जब मैं अपनी पत्नी के साथ सोया था तो लगा कि वर्दी पहने हुए कोई आदमी पागल कुत्ते की तरह उसके शरीर को नोच रहा है और वह छटपटाती हुई जोर-जोर से चीख रही है। मेरे हाथ पाँव सुन्न करके एक कोने में डाल दिया गया है। सब कुछ बहुत ही भयावह था। उस समय मुझे बहुत जोर की प्यास लगी थी - क्या तुमसे उसने ऐसा कुछ बताया था?'

'नहीं साहब, वे मुझसे कुछ नहीं बताते थे।'

अब पाँचवाँ बोल रहा था - 'देखो, हमारे लिए इस कोतवाल का ऐसा कुछ खास मतलब नहीं था। उसके मरने या जीने से हमारा कुछ नहीं बदलता। बात सिर्फ इतनी ही है कि महकमे की बात को उसने डायरी में लिखा था। तुम उसके सबसे करीबी रहे हो, इस बात को कहीं किसी से कहना मत।'

कांस्टेबुल को थोड़ी राहत मिली, बोला - 'नहीं साहब, मैं क्यों कहूँगा?'

तब तक दूसरा बोला - 'वैसे तुम कह भी दोगे तो हमें कोई फरक नहीं पड़ेगा। तुम्हारी बात से हमारा कुछ बनने-बिगड़ने का नहीं।'

कांस्टेबुल फिर डर गया, बोला - 'नहीं साहब, भला मैं क्यों कहने जाऊँगा?'

तीसरा आदमी अपने होंठों के भीतर एक विद्रूप किस्म की हँसी हँस रहा था, बोला - 'वैसे तुम्हारी जो मर्जी हो करना और अब जाओ।'

बाहर आकर कांस्टेबुल ने घड़ी देखी तो रात के ढाई बज रहे थे। सन्नाटा इतना गहरा था कि ओस की बूँदों का गिरना तक सुनाई दे जाय। सड़क पर बत्तियाँ जल रही थीं। बीच-बीच में अँधेरी गलियों को पार करते हुए उसे लग रहा था कि वही विद्रूप हँसी

हँसती कोई काली छाया पीछे-पीछे चली आ रही है। उसने मुड़कर देखा तो कहीं कुछ नहीं। दूर-दूर तक सिर्फ अँधेरा और सन्नाटा था। अचानक उसके होंठों से भी ठीक वैसे ही हँसी फूट पड़ी। उसने हँसी रोकना चाहा लेकिन वह और ज्यादा विद्रूप हो गई। कांस्टेबुल इतना डर गया कि उसका दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। वह वहीं रुक गया और बहुत आहिस्ते से धड़कन को सुनने की कोशिश करने लगा। लेकिन तब तक दूर कहीं रोते कुत्तों की आवाज सुनाई पड़ने लगी।